

वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत हठयोग

ज्योति शर्मा* व प्रो० गणेश शंकर**

प्रस्तावना : वेदों में हठयोग विद्या के संबंध में बात की जाए तो हठयोग परम्परा के मुख्य विषय के रूप में प्रचलित प्राणायाम का प्रयोग प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में भी वर्णित है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है। एक जगह प्रयुक्त हुआ है—“प्राणाद्वायुरजायत” अर्थात् आदि पुरुष प्राण से वायु प्रकट हुई है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में अपान की ओर भी निर्देश किया गया है। इसी प्रकार अथर्ववेद में प्राणायाम के महत्त्वपूर्ण तत्त्व ‘प्राण’ की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है।

“प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।

यतो भूतः सर्वेश्वरो यस्मिन् सर्वप्रतिष्ठितम्।।”

प्राणः प्रजा अनु

वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।

प्राणो हो सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणाति यच्च नद्य

अर्थात्— उस प्राण को नमस्कार है जिसके वश में यह सम्पूर्ण संसार है सब प्राणियों का जो ईश्वर है तथा जिसमें सभी प्रतिष्ठित हैं अर्थात् जिसकी सत्ता से ही सबकी सत्ता है। ‘प्राण पिता है और उसके लिए सारे प्राणी प्रिय पुत्र की तरह हैं। प्राण सम्पूर्ण सृष्टि का ईश्वर है, जो श्वास लेता है और जो श्वास नहीं लेता है अर्थात् जड़-चेतन जगत् दोनों में प्राण विद्यमान है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद में ही शरीर में आठ चक्रों व नवद्वारों के संबंध में बताते हुए कहा गया है—

“अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।”

अर्थात्— इस शरीर रूपी अयोध्यापुरी में आठ चक्र और इसके नौ द्वार हैं, इसमें आत्मा निवास करता है। अतः इस शरीर के माध्यम से योग विद्या के द्वारा नवद्वारों को बंद करके व अष्टचक्रों का ज्ञान प्राप्त करते हुए उस आत्मा को जानना चाहिए। प्रस्तुत शोधपत्र में वर्णन किया है कि हठयोग योग शास्त्र की महत्त्वपूर्ण विद्या है और जिसका विस्तृत विवेचन हमें वेदों, उपनिषदों, पुराणों के ग्रन्थों में मुख्य रूप से देखने को मिलता है। योग के सभी मार्गों में हठयोग को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसका संबंध मनुष्य के सर्वांगीण विकास से होता है। सामान्य व्यक्ति हठयोग को हठपूर्वक की जाने वाली योग-प्रणाली समझते हैं, लेकिन यह एक व्यवस्थित साधना पद्धति है। हठयोग में ‘ह’ का तात्पर्य—प्राणशक्ति, पिंगला नाड़ी, सूर्यस्वर, पुरुष, सक्रियता, उष्णता, बहिर्मुखता, अनुकम्पी स्नायु संस्थान व ‘ठ’ शब्द का तात्पर्य मन शक्ति, इडानाड़ी, चन्द्रस्वर, स्त्री, निष्क्रियता, शीतलता, अंतर्मुखता, परानुकम्पी स्नायु संस्थान से है। प्राणशक्ति का संबंध व्यक्ति के शारीरिक कार्य व जीवनचर्या जैसे—श्वसन, पाचन, उत्सर्जन व रक्त परिभ्रमण आदि क्रियाओं को सम्पन्न कराने से है, जबकि मनस शक्ति का संबंध व्यक्ति के मानसिक कार्यों जैसे— जानना, मनन—चिंतन, ध्यान, स्मृति, सत—असत् विवेक आदि क्रियाओं को सम्पन्न कराने से है। प्राणशक्ति व मनःशक्ति दोनों के संतुलित रूप से कार्य करने पर व्यक्ति का समग्र विकास होता है और जिससे उसके कार्य और व्यवहार भी सुव्यवस्थित ढंग से सम्पादित होते हैं, लेकिन इसके विपरीत अर्थात् दोनों शक्तियों में यदि व्यक्ति के केवल एक ही पक्ष का विकास होता है तो दोनों शक्तियों के बीच कभी—कभी असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है जिससे अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं अतः हठयोग विज्ञान दोनों शक्तियों के मध्य संतुलन और सामंजस्य स्थापित करता है।

अध्ययन क्षेत्र : योग भारतीय जीवन पद्धति का एक अति विशिष्ट अंग है और वेद भारतीय संस्कृति का सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं। वेदों की संख्या चार है— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। सृष्टि के आरंभ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा चार ऋषियों को परमात्मा ने वेद का ज्ञान प्रदान किया। साथ ही योग विद्या का भी वर्णन किया। इन ऋषियों ने भी वैदिक मंत्रों के दर्शन से पूर्व योग साधना अवश्य की होगी इसलिए वेदों में कई

*शोधार्थी योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

**विभागाध्यक्ष, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

जगह पर योग की चर्चा की गई है। वेद विश्व के ज्ञानविज्ञान के भंडार हैं। वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय आध्यात्मिक उन्नति करना है। इसके लिए यज्ञ, उपासना, पूजा व अन्य कर्मकाण्डों का वर्णन किया गया है। इन सबसे पूर्व याग साधना का विधान किया गया है। अर्थात् विद्वानों का कोई भी कर्म बिना योग के पूर्णतः (सिद्ध) नहीं होता। इस बात से यह सिद्ध होता है कि वेदों में भी योग विद्या को कितना महत्व दिया गया है। अर्थात् जिन (इन्द्र-अग्नि) देवता के बिना ज्ञानी का यज्ञ भी सफल नहीं होता, उसी में ज्ञानियों को अपनी बुद्धि और कर्मों का योग करना चाहिये, वेदों में हठयोग विद्या के संबंध में बात की जाए तो हठयोग परम्परा के मुख्य विषय के रूप में प्रचलित प्राणायाम का प्रयोग प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में भी वर्णित है। वेदों में शरीरस्थ नाडियों और प्राण आदि का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद की अंकसंहिता में कहा गया है।

“क्व त्रोचक्रा त्रिव्रतो रथस्य त्रयो बन्धरो ये सनीलाः।

कदा योगो वाजिनो राम्भस्य येन यज्ञं ना सत्योपयाथः।।”

अर्थात्— इस मंत्र में शरीर को रथ की संज्ञा दी गई है, और कहा गया है— इस शरीर रूपी रथ के मध्य के नीचे चक्र जिनके नाम—मूलाधार, स्वाधिष्ठान व मणिपुर हैं, वे कहाँ हैं? और उनका स्थान विशेष कौन सा है? यह हमें ज्ञात नहीं है। जीवनधारक कन्दर्प नामक वायु कहाँ है? यह भी हमें ज्ञात नहीं है। तथा सहस्र दल कमल सहित ऊपर के तीन चक्र जिनके नाम—अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र हैं। वे कहाँ हैं? यह भी हमें ज्ञात नहीं है। सर्वशक्तिमान् सर्वसम्पन्न स्व-प्रकाश शिव अर्थात् परमात्म तत्त्व का स्थान शरीर में कहाँ है? मूलाधार में सोयी हुई कुण्डलिनी शक्ति का परमात्म शिव के साथ लय किस समय और किस प्रकार होता है? इसका भी हमें ज्ञान नहीं है। हे परमत्मान्! आपकी असीम कृपा से लययोग संबंधी सभी बातें मुझे ज्ञात हों और आपकी असीम कृपा से मैं इस लययोग का अभ्यास करूँ। इसी क्रम में उपनिषदों के संबंध में बात की जाये तो उपनिषदों में हठयोग की चर्चा अनेक स्थानों पर हुई है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में योगों के लिए योगाभ्यास हेतु कौन सा स्थान उत्तम है। इस संबंध में कहा गया है—

“समेशुचौ शर्करा वह्नि बालुका, विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।

मनोऽनुकूले न तु चक्षः पीडने शहानिवाताश्रयो प्रयोजयेत्।।”

अर्थात्— योगों को ऐसा समतल स्थान प्राप्त करना चाहिये, जो स्थान कंकड़, अग्नि, बालू, जल और शब्द (कोलाहल) से रहित हो, वह स्थान मन को प्रिय लगने वाला हो तथा जहाँ आँखों को पीड़ा देनेवाली कोई वस्तु न हो। ऐसा स्थान योगाभ्यास के लिए उत्तम है, क्योंकि ऐसे स्थान में योगाभ्यास करने से मन अस्थिरता से एकाग्रता प्राप्त करता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में ही कहा गया है— **“लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वर सौष्ठवं च।।”**

अर्थात्—शरीर का हल्का होना, आरोग्यता, इन्द्रियों की विषयासक्ति की भावना नष्ट होना, नेत्रों को प्रसन्न करने वाली शरीर की कांति, मधुर स्वभाव, शुभ गंध आदि योग प्रवृत्ति के प्रथम लक्ष्य के अन्तर्गत आते हैं। इसी भाव को हठप्रदीपिका में हठसिद्धि के लक्षण के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी उपनिषद् में आगे कहा गया है—

“न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।

प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।।”

“अर्थात्— योग की अग्नि में तपा हुआ शरीर उसके वश में हो जाता है। उपनिषदों में प्राणायाम के महत्त्वपूर्ण तत्त्व ‘प्राण’ के संबंध में वर्णन न जरा न मृत्युः। प्राप्तस्य योगाग्निमय शरीरम्। “अर्थात् योग की आग्नि में तपा हुआ शरीर उसके वश में हो जाता है। उपनिषदों में प्राणायाम के महत्त्वपूर्ण तत्त्व ‘प्राण’ के संबंध में वर्णन प्राप्त है। प्रश्नोपनिषद् (२/६) कहता है—“प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्” अर्थात्— प्राण वह तत्त्व है जिसके होने पर ही सबकी सत्ता है। प्रश्नोपनिषद् (२/१३) में पुनः कहा गया है—“प्राणस्येदं वशे सर्वम्” अर्थात्— प्राण के वश में यह सम्पूर्ण जगत् है, एवं ‘आत्मन एषः प्राणो जायते प्रश्नोपनिषद् (३/३) अर्थात्— यह प्राण उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से ही उत्पन्न हुआ है।

विरलेषण : हठयोग के घटक तत्वों में नाड़ी ज्ञान का एक अलग एवं विशिष्ट स्थान है और इसका वर्णन हमें कठोपनिषद् में प्राप्त होता है—जहाँ वर्णित है कि हृदय में एक सौ एक प्रधान नाड़ियाँ हैं, जो वहाँ से सब और फैली हुई हैं। उनमें से एक नाड़ी जिसको सुषुम्ना कहते हैं, हृदय से मस्तिष्क की ओर गयी है। भगवान् के

परमधाम में जाने का अधिकारी उस नाड़ी के द्वारा शरीर से बाहर निकलकर सबसे ऊंचे लोक में अर्थात् परमधाम में जाकर अमृतस्वरूप परमानन्दमय परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है, वहीं दूसरे जीव दूसरी नाड़ियों के द्वारा शरीर से बाहर निकलकर अपने-अपने कर्म और वासना के अनुसार नाना योनियों को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार योगशिखोपनिषद् में योग की परिभाषा दी गई है जो हठयोग के ग्रंथों से मेल खाती है। इस परिभाषा के अनुसार—“प्राण व अपान की एकता, कुण्डलिनी शक्ति का आत्मतत्त्व या ब्रह्मतत्त्व के साथ मिलन कराना, सूर्य और चन्द्र स्वरो का मिलन तथा जीवात्मा का परमात्मा से मिलन ये सभी अवस्थाएँ योग कहलाती हैं।” यह परिभाषा संयोगपरक परिभाषा है। इन सभी युग्मों के मिलन से जीवात्मा अपने स्वरूप को पहचान लेता है तब उसका अज्ञान नष्ट होकर ज्ञान का उदय हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप उसके सभी दुःख समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार हठयोग के अन्तिम लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार या आत्मज्ञान की प्राप्ति के संबंध में बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है—

“आत्मा वा द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।”

अर्थात्— आत्मा ही जानने योग्य है। इस आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन (ध्यान) का आश्रय लेना चाहिए। इनके द्वारा ही आत्मसाक्षात्कार संभव है। इस प्रकार उपनिषदों में हठयोग विषयक ज्ञान पर्याप्त मात्र में मिलता है। इसके अतिरिक्त कठोपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद् आदि उपनिषदों में योगांगों का वर्णन प्राप्त होता है। इसी क्रम में पुराणों में भी हठयोग विषयक ज्ञान वर्णित है। जिसका प्रमुख उदाहरण सर्वशिरोमणि भागवतपुराण है। इस पुराण में वर्णित है कि कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से उठाकर सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस पुराण में हठयोग सम्बन्धी क्रियाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है। अग्निपुराण में आसनों के अतिरिक्त युक्त प्राणायाम से लाभ एवं अयुक्त प्राणायाम से होने वाली हानियों की भी चर्चा की गई है। शिवमहापुराण में यम—नियम सहित आठ अंगों का उल्लेख कर संक्षेप में आसन, प्राणसंरोध, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के छः अंग माने हैं। इसके अतिरिक्त इस पुराण में आठ आसनों का वर्णन भी मिलता है।

इसी प्रकार वेदों, उपनिषदों व पुराणों के अतिरिक्त यदि प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र के ग्रंथों का अध्ययन किया जाए तो उनमें हठयोग विषयक ज्ञान का उल्लेख प्राप्त होता है। आयुर्वेद शास्त्र की वमन क्रिया तथा अर्वाचीन हठयोग के प्रथम अंग के षट्कर्मों की प्रमुख गजकरणी क्रिया एवं वमन धौति रूपी उपांग क्रिया में प्रकार भेद होने पर भी मौलिक सामंजस्य यह है कि दानों क्रियाएँ शरीर को कफ—पित्त व इनसे संबंधित रोगों को दूर कर शरीर को स्वच्छ व नीरोगी बनाती हैं। “चरक संहिता के अध्याय बीस में वर्णित है कि— कफ में वैद्य सम्पूर्ण उपक्रमों में से वमन को प्रधानतम मानते हैं क्योंकि वह आदि से ही अमाशय में अनप्रविष्ट होकर विकार संबंधी कफ की जड़ को अशेषतः ऊपर खींच लाता है और वहाँ पर कफ के जीते जाने पर शरीर के अन्तर्गत कफ के विकार शान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार जहाँ घेरण्डसंहिता एवं हठप्रदीपिका में वमन हेतु जल किस प्रकार का होना चाहिए इसको स्पष्ट नहीं किया गया है, परन्तु आयुर्वेद के ग्रंथों में इसकी चर्चा करते हुए स्पष्ट कहा गया है कि “कफ रोगों में पीपल और सेंधा नमक इनके चूर्ण को गरम जल में, पित्त रोगों में परवल, अड़सा और नीम इनको शीतल जल में तथा अजीर्ण रोगों में गरम जल में सेंधा नमक डालकर वमन करना चाहिए” और इन सब वमनों में सेंधा नमक मधु सहित देना हितकर माना गया है। वहीं आयुर्वेद की नस्यक्रिया और अनुवासन बस्ति हठयोग की नेति क्रिया और वज्रोलिमुद्रा के समकक्ष ही हैं, क्योंकि इन क्रियाओं की विधि एवं इनसे प्राप्त लाभों में कोई विशेष भेद नहीं है, यदि आयुर्वेद शास्त्रों में वर्णित क्रियाओं में औषधियों को सम्मिलित नहीं किया जाये। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अर्वाचीन हठयोग के प्रथम अंग के रूप में प्रतिष्ठित षट्कर्मों को इसवी शताब्दी से पूर्व तथा उसके कुछ समय बाद के ग्रंथों में मुख्य रूप से वर्णित आसन जिनसे स्थिरता, आरोग्यता एवं लघुता प्राप्त होती है, 13 का वर्णन ईसा पूर्व रचित महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र में देखने को मिलता है जहा महर्षि पतंजलि ने आसनों से स्थिरता और अर्थात् अज्ञान नष्ट होता है। वहीं हठयोग के महत्त्वपूर्ण अंग प्राणायाम से ज्ञान को ढकने वाला आवरण

उपसंहार : इस प्रकार हम देखते हैं कि हठयोग विषयक ज्ञान ईसा पूर्व रचित वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं आयुर्वेद के ग्रन्थों में देखने को मिलता है। इस प्रक्रिया प्रधान योग परम्परा की प्राचीनता के विषय में यदि हम और चर्चा करें तो यह प्रक्रिया प्रधान योग परम्परा भारत देश की एक विशेष देन है। इसका इतिहास भारत का प्रागैतिहासिक काल से सम्बन्धित है। सिन्धुघाटी की सभ्यता में उपलब्ध मुद्राओं एवं पदमासन की स्थिति में उत्कीर्ण किसी देव विशेष का चित्र इस बात का परिचायक है कि यह प्रक्रिया प्रधान योग परम्परा प्रागैतिहासिक काल में भी विद्यमान एवं भारतीय ऋषियों की अक्षय सम्पत्ति थी। श्री देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय भी अपनी पुस्तक 'भारतीय दर्शन का सरल परिचय' में इस संबंध में कहते हैं— "सचमुच ये क्रियाएँ बहुत प्राचीन थीं। सिन्धु सभ्यता के ठोस ध्वंसावशेष उदाहरण के लिए पत्थर की मूर्तियाँ तथा मुहरों पर अंकित चित्र अकाट्य रूप में इस बात की सूचना करते हैं कि ये क्रियाएँ इस देश में 3000 ईसवी पूर्व तक भी प्रचलित थीं। कालक्रम से ये क्रियाएँ बहेतु सामग्री जैसी हो गई जिन्हें तरह-तरह के धार्मिक सम्प्रदायों ने ही नहीं अपितु दार्शनिक सम्प्रदायों तक ने भी अपना लिया था।

सन्दर्भ :

1. मन्दिर, श्री शिवप्रकाश. (2018). ऋग्वेद 10/90/13. लक्ष्मी प्रकाशन.
2. कम्बोज, डॉ. जियालाल. (2019). अथर्ववेद 10/2/23. शिवालिक प्रकाशन.
3. कम्बोज, डॉ. जियालाल. (2019). अथर्ववेद 11/4/10. शिवालिक प्रकाशन.
4. कम्बोज, डॉ. जियालाल. (2019). अथर्ववेद 10/2/33. शिवालिक प्रकाशन.
5. मन्दिर, श्री शिवप्रकाश. (2018). ऋग्वेद 10/189/2. लक्ष्मी प्रकाशन.
6. गिरी, महेशानन्द. (1975). श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/10. वाराणसी: दक्षिणीमूर्ति मठ.
7. गोता प्रेस. (2011). कठोपनिषद् 2/3/16. गोता प्रेस.
8. गोता प्रेस. (2011). वृहदारण्यक उपनिषद् 4/5/6. गोता प्रेस.
9. गोता प्रेस. (2011). योगशिखोपनिषद् 1/133. गोता प्रेस.
10. पोद्दार, हनुमान प्रसाद. (2011). शिवपुराण 7/2/37. गोता प्रेस.
11. राधाकृष्णन, एस. (2010). भारतीय दर्शन. राजपाल एंड सन्स.
12. सिन्हा, प्रो. हरेन्द्र पाल. (2018). भारतीय दर्शन की रूपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास.
13. निगम, डॉ. शोभा. (2011). भारतीय दर्शन. मोतीलाल बनारसीदास.
14. विश्वेश्वर, स्वामी. (2010). न्यायकुसुमाञ्जली. चौखम्बा विद्या भवन.
15. शर्मा, डॉ. भीष्मदत्त. (2013). ऋग्वेद संहिता सायण टीका. चौखम्बा कृष्णदास एकेडमी.
16. ऋग्वेद अंक संहिता मन्दिर, श्री शिवप्रकाश. (2018). ऋग्वेद 1/34/9. लक्ष्मी प्रकाशन.